लोकसभा चुनाव परिणाम
धारणा का यथार्थ

अवधेश कुमार

13 वर्षों बाद किसी लोकसभा चुनाव परिणाम को नई प्रवृत्तियाँ स्थापित करने वाला माना जा रहा है। इसे कई मायनों में भारत के राजनीतिक इतिहास का मोड़ बिन्दु भी कहा जा रहा है। चुनाव परिणामों को लेकर कई ऐसी धारणाएँ बनाई गईं है जिन पर गहराई से विचार करना आवश्यक है। ऐसे कम से कम छह निष्कर्ष दिए गए हैं जिनसे 2009 का का आम चुनाव पिछले दो दशक से अलग नजर आता है। इनकी छानबीन करने के लिए पहले इन निष्कर्षों को रेखांकित करें- 1. यह केन्द्र में राजनीतिक स्थिरता का जनादेश है, 2. यह कांग्रेस के पुनरुत्थान एवं भाजपा के क्रमिक क्षरण का परिचायक है, 3. देश में दो ध्रुवीय राजनीति का सुदृढ़ीकरण हुआ है, 4. क्षेत्रीय आकांक्षाओं वाली राजनीति या क्षेत्रीय शक्तियों के विलोपन की प्रक्रिया सशक्त हुई है, 5. सरकार क्षेत्रीय क्षत्रपों के दबावों से मुक्त हुई है, 6. वाममोर्चा की कमर टूट गई है, ..आदि आदि। तो क्या वाकई चुनाव परिणाम इन सभी धारणाओं की पुष्टि करते हैं? क्या यह चुनाव परिणाम समग्र रुप में नई प्रवृत्तियों की स्थापना करने वाला है? इसके उत्तर के लिए हम इन निष्कर्षों को तथ्यों की कसौटी पर कसें।

1. चुनाव परिणामों की मोटी तस्वीर निस्संदेह इस बात को प्रमाणित करती है कि मतदाताओं ने स्थिर सरकार के लिए जनादेश दिया है। उड़ीसा को छोड़कर पूरे देश की तस्वीर में एकरूपता है। वे सारी राजनीतिक शक्तियाँ पराजित हुईं हैं जिनकी विजय से केन्द्र में अस्थिरता की आशंका थी। जहाँ काँग्रेस एवं उसके सहयोगी मजबूत थे वहाँ उन्हें विजय मिली एवं जहाँ भाजपा एवं राजग थे वहाँ उन्हें। कहने का तात्पर्य यह कि जहाँ मतदाताओं को राजग के शासन में आने का आभास था वहाँ उसे सशक्त किया गया एवं जहाँ संप्रग के जीतने का वहाँ उसे। तीसरी शक्ति के नाम से एकत्रित सभी दलों को जनता ने नकार दिया। तमिलनाडु में किसी को भी द्रमुक एवं काँग्रेस के इतनी ताकत से वापस आने की उम्मीद नहीं थी। चुनाव बाद मतदाताओं की प्रतिक्रिया बतातीं हैं कि जयललिता द्वारा वामदलों के साथ गठजोड़ करने से लोगों में यह संदेश गया कि विजित होने के बाद ये काँग्रेस या भाजपा के नेतृत्व में या तो सरकार बनने नहीं देंगी या बनी भी तो उसे हमेशा अस्थिर बनाए रखेंगी। आंध्रप्रदेश में यही बात तेलुगूदेशम के साथ लागू होती है। वामदलों के साथ गठजोड़ का मतदाताओं में नकारात्मक संदेश गया। वैसे चुनावी अंकगणित में इनकी दुर्दशा में क्षेत्रीय दलों के बीच मतों का बँटवारा भी प्रमुख कारण नजर आता है किंतु स्थिरता का जन मनोविज्ञान एक प्रमुख कारक था, इसे कोई नकार नहीं सकता। आखिर काँग्रेस की सीटें आंध्र में पिछले 29 से बढ़कर 33 यूँ ही नहीं हो गई। तो कुल मिलाकर यह धारणा सही है।

2. दोनों प्रमुख प्रतिद्वंद्वी पार्टियों को प्राप्त मत एवं सीटों की संख्या से पहली नजर में ऐसा निष्कर्ष निकलता है कि काँग्रेस फिर अपने पुराने वैभव की ओर लौट रही है तथा भाजपा अब ढलान की ओर है। काँग्रेस को मिले 28.52 प्रतिशत मत आश्चर्यजनक नहीं हैं, लेकिन उसे 206 स्थान मिलने की उम्मीद कोई नहीं कर रहा था। 1991 के बाद पहली बार कांग्रेस ने इतनी अधिक सीटें पाईं हैं। भाजपा को प्राप्त 18.83 प्रतिशत मत एवं 116 सीटें 1996 के बाद की सबसे बुरी पराजय है। 2004 में पराजय के बावजूद उनको कुल 22.16 प्रतिशत मत मिले थे, जबकि इस बार 18.83 प्रतिशत। मतों में 3.33 प्रतिशत का क्षरण बहुत बड़ी बात है। इसके विपरीत कांग्रेस के मतों में करीब दो प्रतिशत की बढ़ोत्तरी हुई है। दोनों पार्टियों के बीच

2004 में जहाँ 3.37 प्रतिशत मतों का अंतर था वहीं इस बार 9.69 प्रतिशत का भारी अंतर आ गया है। भाजपा इस समय जिस दौर से गुजर रही है उसमें सामान्यत: यह कल्पना कर पाना मुश्किल है वह इतने भारी अंतर को पाट सकेगी। इस परिप्रेक्ष्य में यह तर्क एकबारगी गलत नहीं है कि 1989 से 1998 तक उसके मतों में उछाल की

> *चुनाव परिणामों की मोटी तस्वीर निःसंदेह इस बात को प्रमाणित करती है कि मतदाताओं ने स्थिर सरकार के लिए जनादेश दिया है।*

प्रवृत्ति उल्टी दिशा में मुड़ चुकी है। इसके विपरीत कांग्रेस में उत्साह है। जिन राज्यों में काँग्रेस एवं भाजपा का सीधा मुकाबला है उनमें राजस्थान में काँग्रेस ने भाजपा को विधानसभा चुनावों से भी बुरी शिकस्त दी है। काँग्रेस ने 47.19 प्रतिशत मत एवं 21 सीटें जबकि भाजपा ने 36.57 प्रतिशत मत एवं केवल चार सीटें ही पाईं। है। 2004 में भाजपा ने 49.01 प्रतिशत मत एवं 25 से 21 सीटों की आशातीत सफलता पाई थी। विधानसभा चुनाव में उसे 38 प्रतिशत मत मिले थे। इसके अनुसार उसे 13 लोकसभा क्षेत्रों में बढ़त थी। काँग्रेस ने उत्तराखंड में भाजपा का सफाया कर दिया तो उम्मीदों के विपरीत गुजरात एवं मध्यप्रदेश में स्थिति सुधरी है।

सबसे महत्वपूर्ण बात उत्तर प्रदेश में पिछले नौ की जगह 21 स्थान के साथ आशातीत सफलता पाना है। बिहार में भी उसे 10.26 प्रतिशत मत मिले हैं जो 2004 के 4.49 प्रतिशत के दोगुने से ज्यादा है। उ.प्र. में पिछले लोकसभा चुनाव में 12.04 प्रतिशत मत के मुकाबले काँग्रेस ने 18.25 प्रतिशत मत पाए। यह डेढ़ गुने की बढ़त है। भाजपा का मत तो पिछली बार ही दरककर 22.17 तक आ गया था, इस बार यह 17.50 प्रतिशत रह गया। मतों में वृद्धि और कमी का यह ग्राफ बहुत कुछ कह देता है। उ.प्र. में काँग्रेस की स्थिति सुधरने का अर्थ राष्ट्रीय स्तर पर उसका शक्तिशाली होना है। किंतु काँग्रेस का यह समर्थन स्थायी है यह कहना अभी मुश्किल है। अन्य प्रदेशों की भाँति यहाँ भी स्थिरता मुद्दा था, लेकिन काँग्रेस को सबसे ज्यादा लाभ भाजपा के विरुद्ध मुस्लिम मतों के एकत्रीकरण से हुआ है। यह प्रवृत्ति आगे जारी रहती है तो काँग्रेस के पुनरुत्थान एवं भाजपा के पराभव को कोई टाल नहीं सकता। किंतु सपा का 23. 26 प्रतिशत तथा बसपा का 27.42 प्रतिशत मत काँग्रेस से अधिक है। वस्तुत: उ. प्र. की सही राजनीतिक अंतर्धारा की पहचान के लिए 2012 में होने वाले विधानसभा चुनाव एवं पाँच वर्ष बाद के लोकसभा चुनाव की प्रतीक्षा करनी होगी। जहाँ तक बिहार की बात है तो काँग्रेस का मत 40में से 37 सीटों पर चुनाव लड़ने से बढ़ा है। वहाँ अभी काँग्रेस के उठकर खड़ा होने के लिए लंबी मशक्कत की आवश्यकता है। इसी तरह छत्तीसगढ़ एवं कर्नाटक अभी भी उसके लिए बियावान बने हुए हैं। काँग्रेस को कई प्रदेशों में स्थिरता के मनोविज्ञान के साथ गठजोड़ का तो कहीं स्थानीय दलों के मत विभाजन का भी लाभ मिला है। प. बंगाल में कांग्रेस को तृणमूल काँग्रेस के साथ गठजोड़ का लाभ मिला है तो आंध्र में मत विभाजन का। इनमें कभी परिवर्तन भी हो सकता है। पश्चिम बंगाल की अपनी विजय को सुदृढ़ करने के लिए कांग्रेस को काफी मेहनत की जरुरत है। उसकी सफलता का आधार तृणमूल है। इसलिए सीटों एवं मतों में सुधार की सफलता स्वीकार करते हुए भी इसे भविष्य का दिशासूचक मानना अभी जल्दबाजी है।

3. मोटे पर देश में दो ध्रुवीय राजनीति की तस्वीर बनी हुई दिख रही है। चुनाव परिणाम का एक महत्वपूर्ण ठोस तथ्य यह है कि 543 में केवल 100 के करीब स्थान ही ऐसे हैं जो दोनों प्रमुख गठजोड़ों से बाहर के दलों या व्यक्तियों ने पाए हैं। यानी दोनों प्रमुख प्रमुख गठजोड़ों के पास करीब 440 स्थान। इससे बड़ा प्रमाण दो ध्रुवीय राजनीति का और क्या हो सकता है। आप यदि मतों की भी गणना करेंगे तो इन दो ध्रुवों से बाहर 25 प्रतिशत से भी कम मत गए हैं। इस प्रकार 2009 के लोकसभा चुनाव को दो ध्रुवीय राजनीति पर मुहर लगाने वाला माना जा सकता है। किंतु जो कारण काँग्रेस की विजय के हैं वे ही इस संदर्भ में भी लागू होते हैं। कई राज्यों के परिदृश्य इसी राष्ट्रीय परिदृश्य के समान दो ध्रुवीय नहीं हैं तो कई राज्यों के ध्रुवों में इन दोनों शक्तियों में से कोई एक अनुपस्थित है। उदाहरण के लिए उ.प्र. की राजनीति चार ध्रुवीय है तो बिहार में काँग्रेस के कारण ही त्रिध्रुवीय हो गया। उड़ीसा की दो ध्रुवीय राजनीति में भाजपा गौण हो गई। आंध्र में भी राजनीति त्रिध्रुवीय हुई और वहाँ भी भाजपा गौण है।

4. जहाँ तक क्षेत्रीय शक्तियों का प्रश्न है तो यकीनन इस चुनाव में अनेक दलों एवं नेताओं को धक्का लगा है। इनसे पहली नजर में यह धारणा बनती है कि 1989 से क्षेत्रीय शक्तियों के उभार के साथ जो दौर आरंभ हुआ उसके अंत की प्रक्रिया आरंभ हो गई है। उड़ीसा में बीजू जनता दल को छोड़कर केवल उन्हीं क्षेत्रीय दलों एवं नेताओं को सफलता मिली, जिनका भाजपा या कांग्रेस के साथ गठजोड़ था। क्षेत्रीय दलों में दुर्दशा का शिकार होने वालों में लालू प्रसाद यादव के राजद एवं रामविलास पासवान के लोजपा का स्थान सर्वोपरि है। वैसे मत प्रतिशत के हिसाब से चुनाव आयोग ने राजद को राष्ट्रीय पार्टी का दर्जा दिया था। यही बात राकांपा, बसपा के साथ भी है। राजद को 19.30 प्रतिशत मत एवं चार स्थान मिले तो लोजपा को

केवल 6.55 प्रतिशत मत। पिछले लोकसभा चुनाव में राजद को 30.67 प्रतिशत एवं लोजपा को 8.19 प्रतिशत मत मिले थे। इस प्रकार राजद को 11.27 प्रतिशत एवं पासवान को 1.64 प्रतिशत मतों का नुकसान हुआ है। इसकी भरपाई कठिन है। बिहार में जद-यू का अकेले 24.04 प्रतिशत एवं भाजपा का 13.93 प्रतिशत है। कहाँ 25.85 प्रतिशत और कहाँ 37.97 प्रतिशत। 12 प्रतिशत से ज्यादा का अंतर। इतना अंतर यूँ ही पट जाएगा यह संभव नहीं। चुनाव बाद के सर्वेक्षणों से साफ होता है कि लालू का परंपरागत सामाजिक जनाधार हिल गया है। प्रदेश के बदलते माहौल में उसे पुन: प्राप्त करना आसान नहीं है। पासवान का तो कोई ठोस जनाधार था ही नहीं। दूसरे क्षेत्रीय दल आँध्र के तेलुगूदेशम की दुर्दशा भी हमारे सामने है। उसे 2004 के 33.11 प्रतिशत के मुकाबले केवल 24.93 प्रतिशत मत मिले हैं। 8.18 प्रतिशत मतों की कमी साधारण नहीं है। लगातार दो चुनावों में धक्के के बाद पार्टी को ही पहले की तरह एकजुट रखने की चुनौती चन्द्रबाबू नायडू के सामने उत्पन्न हो चुकी है।

लेकिन हम दूसरे नजरिए से देखें तो कुछ तथ्य इसके परे भी दिखाई देंगे। आखिर काँग्रेस के साथ खड़े राकांपा, तृणमूल, द्रमुक, झामुमो, मुस्लिम लीग.. या भाजपा के गठजोड़ में शामिल, शिवसेना, जद-यू, अकाली, राष्ट्रीय लोकदल... आदि हैं तो क्षेत्रीय सीमाओं वाले दल हीं। इनके चुनावी प्रदर्शन को हम किस रुप में देखें? सपा की उ. प्र. में सीटें अवश्य घटीं लेकिन उसकी 23 सीटें क्षेत्रीय ताकत के अंत का प्रमाण नहीं हो सकता। इसके अलावा कई क्षेत्रीय दलों ने कई स्थानों पर चुनाव परिणामों को प्रभावित करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। कम से कम तीन राज्यों में तीन नए क्षेत्रीय दलों ने अपनी ताकत का विशेष अहसास कराया है। आँध्र में अभिनेता के. चिरंजीवी की प्रजाराज्यम पार्टी, तमिलनाडु में अभिनेता विजयकांत की देसिया मुर्पोक्कु द्रविड़ कजगम या डीएमडीके तथा महाराष्ट्र में राज ठाकरे की महाराष्ट्र नवनिर्माण सेना ने क्षेत्रीय शक्ति बनने का आभास करा दिया है। प्रजाराज्यम ने लोकसभा चुनाव में 15.76 प्रतिशत मत पाए। विधानसभा चुनाव में उसे 16.12 प्रतिशत मत मिले। दोनों चुनावों में उसने सबसे ज्यादा नुकसान तेलुगू देशम को पहुँचाया। आँध्र विधानसभा के 294 में से प्रजाराज्यम ने केवल 18 स्थान पाए, लेकिन इसने तेलुगू देशम के शासन में जाने के अवसर को बाधित करने की भूमिका निभाई एवं काँग्रेस को 156 तक सीमित रखने में भी। अगर आप क्षेत्रवार मतों की गणना करेंगे तो साफ हो जाएगा कि कई स्थानों पर तेदेपा एवं प्रजाराज्यम का मत काँग्रेस से डेढ़ गुणा तक ज्यादा था, लेकिन विजय काँग्रेस को मिली। तेदेपा का मत प्रतिशत लोकसभा चुनाव में काँग्रेस से 5.03 प्रतिशत कम तथा विधानसभा चुनाव में केवल 1.9 प्रतिशत कम है। विजयकांत की डीएमडीके ने लोकसभा चुनाव में अकेले जाने का निर्णय केवल अपने मताधार को सुदृढ़ करने के लिए लिया। पार्टी भले एक भी सीट नहीं जीत सकी, लेकिन 35 लोकसभा क्षेत्रों में इसने 50 हजार से ज्यादा मत पाए। द्रमुक के कुल 1.15 करोड़ मतों के मुकाबले इसे 31.25 लाख मत मिले। इसका मत 2006 विधानसभा के 8.38 प्रतिशत से बढ़कर 10.1 प्रतिशत हो गया। अन्नाद्रमुक ने 1.15 करोड़ मत बटोरे। गृह मंत्री पी. चिदम्बरम किसी प्रकार दोबारा मतगणना में 3354 मतों से जीत पाए। उनके क्षेत्र शिवगंगा में डीएमडी के उम्मीदवार ने 60.084 मत पाए। महाराष्ट्र में 'महाराष्ट्र नवनिर्माण' सेना यद्यपि जिन 12 स्थानों पर चुनाव लड़ी उनमें से एक भी जीत नहीं पाई, लेकिन भाजपा शिवसेना को नौ सीटों पर पराजय का कारण बनी। उसके उम्मीदवारों ने एक-एक लाख से ज्यादा मत पाए। मुंबई में तो काँग्रेस की विजय में मनसे की भूमिका से कोई इन्कार कर ही नहीं सकता। राम नाईक एवं किरीट सोमैया जैसे नेता मनसे उम्मीदवारों के कारण हारे। मनसे राकांपा के ग्राफ को पिछले लोकसभा चुनाव से एक सीट कम करने, काँग्रेस को 13 से 17 तक पहुँचाने तथा भाजपा को 13 से नौ तक लाने का कारण बनी है। इस प्रकार यह बात तो ठीक है कि लोकसभा में क्षेत्रीय दलों की शक्ति काफी घटी है एवं काँग्रेस की स्थिति मजबूत होने के कारण उसके साथ के क्षेत्रीय दलों का दबदबा लोकसभा में पहले के समान नहीं रहेगा, किंतु अन्य आर्थिक-सामाजिक-साँस्कृतिक कारणों को अलग रख दें तो चुनावी अंकगणित के अनुसार भी अभी राजनीति से क्षेत्रीय आकांक्षाओं के युग के अवसान की घोषणा कतई नहीं की जा सकती।

5. काँग्रेस की ताकत बढ़ने से इस बार सरकार के क्षेत्रीय क्षत्रपों के दबावों से मुक्त होने की बात केवल आंशिक रुप में ही सत्य है। हमने मंत्रिमंडल गठन में प्रधानमंत्री की परेशानियों को देखा। द्रमुक एवं तृणमूल कांग्रेस का दबाव सबके सामने था। 22 मई के मंत्रिमंडल गठन का द्रमुक द्वारा बहिष्कार तथा काँग्रेस के न चाहते हुए भी ए. राजा को मंत्रिमंडल में शामिल करना वस्तुस्थिति का बयान

कांग्रेस की ताकत बढ़ने से इस बार सरकार के क्षेत्रीय छत्रपों के दबावों से मुक्त होने की बात केवल आंशिक रूप से ही सत्य है।

करने वाला है। भले क्षेत्रीय नेताओं एवं दलों की ताकत घटीं हैं लेकिन 79 सदस्यीय तीन स्तरीय मंत्रिमंडल इस बात का प्रमाण है कि काँग्रेस एवं यूपीए अभी दबावों के दौर से बाहर निकालने का सूत्र नहीं ढूँढ़ पाई है। 206 की संख्या बड़ी अवश्य है लेकिन इतनी बड़ी नहीं कि सरकार में शामिल या बाहर से समर्थन देने वाले क्षेत्रीय दलों के दबावों से पूरी तरह मुक्त हो जाए। आखिर उसे सरकार बचाए रखने के लिए 67 सांसदों का समर्थन तो चाहिए ही।

6. जहाँ तक वामदलों की बात है तो पराजय के जबरदस्त आघात को वे स्वयं भी नहीं नकार रहे। राष्ट्रीय स्तर पर दोनों प्रमुख वामदलों माकपा को 5.34 प्रतिशत मत तथा 16 स्थान एवं भाकपा को 1.43 प्रतिशत मत एवं चार स्थान मिले हैं। माकपा ने पिछले लोकसभा चुनाव में 5.66 प्रतिशत मत पाए थे। तो राष्ट्रीय स्तर पर मतों में ज्यादा कमी नहीं है, लेकिन सीटों में 43 से 27 की कमी आ गई। 2004 में भाकपा को 1.41 प्रतिशत मत मिले थे, इस प्रकार उसके मत में 02 प्रतिशत का हल्का इजाफा है लेकिन सीटों में छः की कमी आ गई। वामदलों की पिछले लोकसभा के 59 के मुकाबले करीब एक तिहाई सीटें ही मिलीं हैं। यह बहुत बड़ी पराजय है। दरअसल, खड़े किए गए ज्यादा उम्मीदवारों एवं गठजोड़ों के कारण ही मतों में अधिक क्षति दिखाई नहीं देती अन्यथा वामदलों के मुख्य जनाधार वाले दोनों प्रदेशों प. बंगाल एवं केरल में जितना बड़ा धक्का उन्हें लगा है उसकी वे सपने में भी कल्पना नहीं कर रहे थे।

7. बंगाल में वाममोर्चा को केवल 15 स्थान एवं 43.30 प्रतिशत मत 1977 के बाद का सबसे बुरा प्रदर्शन है। पिछले चुनाव में वाममोर्चा को 50.07 प्रतिशत मत मिले थे। जिस पं बंगाल में वाममोर्चा औसत 10 प्रतिशत मतों के अंतर से चुनाव जीतता रहा है वहाँ तृणमूल काँग्रेस एवं काँग्रेस का गठजोड़ 44.62 प्रतिशत मत के साथ उससे 1.30 प्रतिशत अधिक मत पाने में सफल हुआ है। दोनों दलों ने 25 स्थानों पर जीत दर्ज की और इनके एक और साथी सोशलिस्ट यूनिटी सेंटर की एक सीट मिला दें तो यह आँकड़ा 26 हो जाता है। भाजपा ने भी दार्जिलिंग सीट जीत ली। 1984 में राजीव गांधी की लहर में काँग्रेस ने अधिकतम 16 सीटें जीतीं थीं। इस बार वह रिकॉर्ड भी टूट गया। आँकड़ों के विश्लेषण से पता चलता है कि तृणमूल काँग्रेस एवं काँग्रेस ने वाममोर्चा का 12 प्रतिशत मत अपनी ओर खींचा है। इसने भाजपा का तो 27 प्रतिशत मत छिटक लिया। तृणमूल-कांग्रेस गठजोड़ को 2004 में जो मत मिले थे उनमें से केवल 3 प्रतिशत मत ही वाममोर्चा को मिले। वाम दलों के लिए चिंता की बात यह है कि ग्रामीण क्षेत्रों में गरीब मजदूरों, छोटे किसानों तक ने उससे किनारा किया है। वास्तव में वाम दलों का समाज के सभी वर्गों से समर्थन आधार कम हुआ है। प्रदेश में मुसलमानों की आबादी करीब एक चौथाई है। 2006 के विधानसभा चुनाव की तुलना में वाममोर्चा को मिलने वाले मुस्लिम मतों में काफी कमी आई है। चुनाव बाद के सर्वेक्षण के अनुसार करीब 58 प्रतिशत मुस्लिम आबादी ने तृणमूल-कांग्रेस गठजोड़ को अपना मत दिया है। सिंगूर और नंदीग्राम की निश्चय ही मतदाताओं का मनोविज्ञान तैयार करने में अहम भूमिका रही है। वास्तव में सिंगूर और नंदीग्राम केवल वाममोर्चा की विकास नीति का परिचायक नहीं है यह जन विद्रोह व राजनीतिक विरोधों से निपटने की उसकी कार्यशैली का भी उदाहरण है। चुनाव में जीत-हार होती है लेकिन प. बंगाल का चुनाव परिणाम वामदलों के लाल दुर्ग के दरकने का प्रमाण है। फिर पहले की तरह शक्तिशाली बनाने के लिए उसे केवल अपनी विकास नीति से लेकर कार्यशैली में ही आमूल बदलाव की आवश्यकता नहीं है, विरोधी काँग्रेस एवं तृणमल काँग्रेस को भी कमजोर करना होगा। एक बार समर्थकों के मोहभंग होने के बाद पुनः उन सबको पहले की भांति निष्ठावान बनाना असंभव होता है। अब आएँ केरल में। केरल में वाम लोकतांत्रिक मोर्चा को पिछली बार 18 स्थानों पर जीत मिली थी। इस बार ठीक उलट काँग्रेस नेतृत्व वाले संयुक्त लोकतांत्रिक मोर्चा को 16 स्थान मिले हैं। काँग्रेस को 40.13 प्रतिशत, मुस्लिम लीग को 5.07 प्रतिशत, केरल काँग्रेस मणि को 2.53 प्रतिशत, केरल काँग्रेस को 2.08 प्रतिशत मत मिले। यानी काँग्रेस नेतृत्व वाले गठजोड़ ने कुल 49.81 प्रतिशत मत पाए, जबकि वाम मोर्चा ने करीब 40 प्रतिशत। यह बड़ा अंतर है। केरल में हर अगले चुनाव में परिवर्तन होता है और इस परंपरा में इसे स्वाभाविक माना जा सकता है। किंतु चुनाव उपरांत के विश्लेषण से पता चलता है कि वाममोर्चा ने ईसाई एवं मुसलमानों सहित समाज के सभी वर्गो से अपना समर्थन गंवाया है। कहा जाता है कि पीपुल्स डेमोक्रेटिक पार्टी के साथ गठजोड़ से उसके मुस्लिम मतों में इजाफा नहीं हुआ। वस्तुतः वाममोर्चा को मिलने वाले मुस्लिम मतों में कमी आई। यह चिंताजनक है। सरकार में भ्रष्टाचार का आरोप, माकपा एवं संघ के कार्यकर्ताओं के बीच हिसंक लड़ाई, मुख्यमंत्री अच्युतानंदन एवं सचिव पी. विजयन के बीच तनाव आदि पराजय के ऐसे अनेक कारण हैं, जो वाम नेतृत्व वाले मोर्चा की कार्यशैली की परिणति है। तो दोनों राज्यों में उसकी कार्यशैली को जनता ने नकारा है। इसमें परिवर्तन लाए बगैर यह कल्पना नहीं की जा सकती कि वाम मोर्चा पहले के समान प्रभावी विजय प्राप्त कर सकेगा। ❑

लेखक वरिष्ठ पत्रकार एवं राजनीतिक विश्लेषक हैं।
ई-मेल : awadheshkmr@yahoo.com